काव्य–पुरूषः रामधारी सिंह दिनकर

डॉ० संयुक्ता सिंह

गोपीनाथ सिंह महिला महाविद्यालय, गढ़वा।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सहसराम के अधिवेशन में महीयसी महादेवी वर्मा ने कहा था – बिहार ने सिर्फ दो ही कवि दिए विद्यापति और दिनकर। यह वाक्य उपस्थित कवियों को शायद अच्छा नहीं लगा हो पर यह आकलन दिनकर के रचना संसार और उसके विकास क्रम को देखने से बिल्कुल सही लगता है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी अतः वह एक क्षेत्र में काम नहीं कर सकते थे क्षेत्र का विस्तार होना आवश्यक था। किन्तु वे जन्मजात कवि थे और कविता उनके हृदय में बसती थी। प्रधानाध्यापक से लेकर कुलपति बनने तक की यात्रा और संसद सदस्य से लेकर भारत सरकार की सलाहकार समिति और शिक्षा मंत्रालय के श्रेण्य पदों पर रहते हुए भी वे कविता तथा रचना जगत् से सदा जुड़े रहे। साहित्य का पल्ला कभी नहीं छोड़ा। उनकी मान्यता थी कि साहित्य जीवन की आँच में ही तपकर निखर सकता है और बिना तपे या भोगे हुए जीवन की बात कहना असरदार नहीं होती।

दिनकर को काव्य रचने की प्रेरणा बचपन में देखे हुए रामतीला के गीतो के आधार पर स्वयं गीत रचने से मिली थी। बाद में गुप्तागी रामनरेश त्रिपाठी आदि से प्रभावित होकर लिखना प्रारंभ किया। वे इतिहास के छात्र थे अतः भीतर में उसकी आँच जलती रहती थी। उस समय बिहार में भी बहुत बड़ी हस्तियाँ इस क्षेत्र में कार्य कर रही थीं। उनमें जयप्रकाश, काशी प्र० जायसवाल, राहुल जी, बेनीपुरी आदि प्रमुख थे। दिनकर ने गाँधी इकबाल, विवेकानन्द, तिलक, कालिदास, कबीर, तुलसी, और टैगोर के साथ नीत्से, रसेल, टॉल्सटॉय, इलियट को भी पढ़ा तथा प्रभावित हुए। उनका झुकाव राष्ट्रीयता की ओर पहले से ही था। किन्तु सुभद्रा कुमारी चौहान, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सनेही आदि अनेक राष्ट्रीय विचारधारा के कवियों को भी उन्होंने अपने हृदय में बसाया। वे प्रमुखतः पौरूष और ओज के कवि थे। सामाजिक चेतना में मानवतावादी दृष्टिकोण का उनमें अद्‌भुत समन्वय था। कल्पना की ऊँची उड़ान के साथ विषम परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की उनमें विलक्षण छटपटाहट थी। उनका स्वाभिमान गलत या अनचाही बातों पर उबल पड़ता था। फिर भी वे उस तनाव को बर्दाश्त कर लेते थे। वे आडम्बर में विश्वास करने वाले नहीं थे। उनके व्यक्तित्व में हिमालय की ऊँचाई के साथ सागर की गहराई भी थी। उन्होंने अपनी विधवा माता से भक्ति और धार्मिक विचारों को प्राप्त किया था क्योंकि पिता तो तीन–चार वर्ष के रहने पर ही चल बसे थे। दिनकर जी रामचरितमानस के बड़े भक्त थे और कभी–कभी सस्वर पाठ भी किया करते थे। वे अपने साथ राम लक्ष्मण और सीता का चित्र भी रखते थे पूजा के लिए।

हिन्दी में दिनकर रेणुका के प्रकाशन के साथ प्रकट होते हैं। इसके पूर्व प्रणभंग का प्रकाशन हो गया है। "रेणुका" में युगीन परिस्थितियों के साथ अन्याय तथा शोषण के विरूद्ध विद्रोह की भावना है। परतंत्रता की बेड़ी को काटने का आह्वान है। इसमें किसी ठोस आधार या भावभूमि का दर्शन नहीं होता है। अतीत प्रियता अवश्य दिखाई देती है जो राष्ट्रीय चेतना का महत्वपूर्ण पक्ष है। अपनी हिमालय कविता में वे एक साथ

ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक पुरुषों के शौर्य को स्मरण करते हैं। ऐतिहासिक स्थानों में नालन्दा, राजगृह, वैशाली आदि का भी। 'तू पूछ अवध से राम कहाँ? वृन्दा बोलो घनश्याम कहाँ।' ओ मगध कहाँ मेरे अशोक, वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ? भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी अनुरक्ति राष्ट्रीय चेतना के तीसरे रूप में संघटित हुई है। हुंकार में दिनकर का क्रान्तिकारी स्वर मुखरित हुआ है। यहाँ रेणुका की तरह प्रेम की सुकुमार कोमल अनुभूतियाँ नहीं हैं। बेनीपुरी ने कहा था– हमारे क्रान्ति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय दिनकर कर रहा है। क्रान्तिकारी को जिन–जिन हृदय मंथनों से गुजरना होता है, दिनकर की कविता उसकी सच्ची तस्वीर है। कवि के अन्तर में प्रकृति और नारी के सौन्दर्य का उपभोग करने की लालसा है किन्तु मिट्टी की पुकार एवं शोषण से क्लान्त सामाजिक जीवन की गूँज उसे दबा देती है–

नहीं यौवन का श्लथ आवेग स्वयं वसुधा भी सभी सँभाल।

शिराओं का कम्पन ले, दिया सिहरती हरियाली पर डाल।।

वस्तुतः विद्रोह, रोष की खोखली आवाज नहीं होता, वरन् वह गहरी पीड़ा होती है। हाहाकार कविता में सामंतों के वैभव और दीन निरीह की दशा पर यह लिखना कितना स्वाभाविक है श्हटो व्योम के – मेघ पंथ से, स्वर्ग लूटने हम आते हैं। दूध–दूध वो वत्स ! तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।श श्रसवन्तीश का प्रकाशन 1940 ई. में हुआ। यहाँ उसकी वाणी पुनः कोमलांगी के सौन्दर्य–वर्णन का निनाद करने लगती है। इस संग्रह में दिनकर का स्वच्छन्दतावाद अपने वेग में है जिसके लक्षण हैं – सौन्दर्य, प्रेम और जिज्ञासा। विद्वानों के अनुसार दिनकर के कवि जीवन में वसंत दो हो बार आया है पहली बार हुंकार में और दूसरी बार 'रसवन्ती' में। सूखे विटप की सारिके को पुकारते हुए कह उठते हैं–

सूखे विटप की डार को कर दे हरी करूणामयी।

पढ़ दे ऋचा पीयूष की उग जाय फिर कोंपल नयी।।

इस काव्य संग्रह में दिनकर का नारी विषयक दृष्टिकोण अनेक रूपों में परिलक्षित होता है। उसका तितली रूप भी है, लज्जाशील ग्रामीण युवती का और उसके मातृरूप का।

द्वन्द्वगीत संग्रहात्मक रचना कवि के मानसिक द्वन्द्वों का परिचायक है। उसमें हर्ष विषाद, हास विलास के द्वन्द्व में झूलते कवि के मन में एक अज्ञात, अनिर्वचनीय सत्ता के प्रति जिज्ञासा तथा कौतूहल है।

तिलतिलकर जल चुके विरह की तीव्र आँच कुछ मन्द करो।

सहने की सामर्थ्य नहीं अपना प्रसार यह बन्द करो।।

इस काव्य ग्रन्थ में कोई सुलझा हुआ, सुव्यवस्थित गंभीर जीवन दर्शन प्रकट नहीं होता।

'दिनकर' का कुरूक्षेत्र 1946 ई. की रचना है। इसमें युद्ध की शाश्वत समस्या और उसके समाधान की खोज से उद्वेलित होकर की गई रचना है। इसमें द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका और नरसंहार से उत्पन्न पीड़ा और त्रासदी की मनः स्थितियाँ परोक्ष रूप से निहित हैं जिसके चित्रण के लिए महाभारत की पृष्ठभूमि पकड़ी गई

है। कुरूक्षेत्र का मार्मिक प्रसंग युधिष्ठिर एवं भीष्म पितामह का संवाद है। युद्ध की अनिवार्यता बताते हुए भीष्म कहते हैं–

युद्ध को तुम निन्द्रद्य कहते हो, मगर

जब तलक हैं उठ रही चिनगारियाँ

भिन्न स्वार्थों के कुलिश संघर्ष की

युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है

वस्तुतः स्वार्थ ही युद्ध का मूल है, जब तक यह विश्व चेतना पर अपना अंकुश लगाए रखेगा, संघर्ष भी चलता रहेगा। वस्तुतः स्वयं में कोई कर्म पाप और पुण्य नहीं होता, इसमें कर्त्ता हृदय की भावना ही मुख्य है।

'सामधेनी' में विशेष रूप से राष्ट्रीय भावना से सम्बन्धित कविताएँ हैं। दिल्ली एवं मास्को नामक कविता में द्वितीय विश्व युद्ध के समर्थक दिनकर रूप की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं। 'सरहद के पार हे मेरे स्वदेश, फलेगी डालों में तलवार, जवानी का भंडार, जवानियाँ' आदि कविताएँ समयानुकूल कवि आचरण का ज्वलंत प्रमाण हैं। सामधेनी की कविताएँ द्वितीय विश्वयुद्ध की छाया में लिखी गई हैं। कवि युद्ध, यांत्रिकता और मानवता के भविष्य के सम्बन्ध में अपने विचार देता है। बापू का प्रकाशन सन् सैंतालीस में हुआ और कुछ ही दिनों के बाद उन्हें गोली मारी गई।

दिनकर में गाँधीवाद अँटता नहीं है। यदि हम प्रेम करते हैं और प्रतिपक्षी के मन में प्रेम नहीं हो तो क्या होगा। बापू की नैया को भगवान ही पार लगा सकते हैं क्योंकि उस पर मानवता की महत्तम पूँजी लदी हुई है। वे स्वीकार कर लेते हैं–

तेरा विराट यह रूप कल्पना पट पर नहीं समाता है।

जितना कुछ कहूँ मगर कहने को शेष बहुत रह जाता है।

इतिहास के आँसू ऐतिहासिक कविताओं का संग्रह है। ये प्राचीन भारत की गौरव गाथा है। आज पीड़ा को कवि अतीत की स्मृतियों में ले जाकर खो जाता है। 'धूप और धुआँ' का प्रकाशन 1951 में हुआ। यहाँ कवि के शब्दों में – ''स्वराज से फूटने वाली आशा को धूप और उसके विरूद्ध उनमें असंतोष को धुआँ कहा गया है। राजनीतिक भ्रष्टाचार नीति और सिद्धान्त की हत्या से जैसे भारत समस्त है। तैंतीस कोटि हित सिंहासन तैयार करो'' अभिषेक आज राजा का नहीं प्रजा का है। वस्तुतः यह काव्य कवि की संक्रान्ति चेतना का सूचक है।

दिनकर को सर्वाधिक प्रतिष्ठा काव्य जगत् में 'रश्मिरथी' और अन्त में 'उर्वशी' से मिली। रश्मिरथी 1952 की रचना है। कवि इन रचनाओं से संतुष्ट भी है। चरित्रों का विकास भी समुचित रूप से हुआ है। दिल्ली और नीम के पत्ते दोनों चौवन की रचनाएं हैं। दिनकर ने इनमें नई कविताओं के माध्यम से नई आर्थिक मुक्ति के साथ–साथ राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक खुराक की माँग की है। नील कुसुम तथा चक्रवाल दोनों क्रमशः 55, 56 की रचनाएँ है। ये रचनाएँ विषय और अनुभूति की दृष्टि से अनेक प्रकार की हैं। चक्रवाल में कवि की

बड़ी भूमिका है। यह दिनकर के गंभीर अध्ययन और चिंतन का परिणाम है। सीपी और शंख (1957) में दिनकर ने लारेन्स आदि अनेक कवियों की रचनाओं का अनुवाद किया है। नये सुभाषित में सौ विषयों पर अनेक पद संगृहीत हैं।

उर्वशी महाकवि दिनकर की सर्वाधिक प्रौढ़कृति है। जिसका प्रणयन 1961 में हुआ। इसका आख्यान ऐतिहासिक है किन्तु उसमें दार्शनिक मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर भी कवि ने विस्तृत विचार किया है। वस्तुतः उर्वशी का कथाधार मिथक है। मिथक अतीत वर्तमान से मिलकर प्रत्यक्ष हो उठता है और भविष्य को आभासित कर जाता है। इसमें पुरूष नारी सम्बन्ध और उनका सौन्दर्य उद्‌घाटित हुआ है। उर्वशी में प्रेम की व्यंजना अपने पराकाष्ठा पर है। काम को मुक्ति के एक मार्ग के रूप में स्वीकार किया गया है। जिसमें फलाशा न हो। परशुराम की प्रतीक्षा 1963 में लिखी गई। यह राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह है। समकालीन परिस्थिति और भारतचीन युद्ध की पृष्ठभूमि पर इन कविताओं से प्रेरणा ग्रहण कर लिखी गई है। कोयला और कवित्व भी इसी काल की रचना है, ये कविताएं भी जीवन की थकान से आपूर्ण हैं। हारे को हरिनाम कवि के अंतिम पड़ाव की रचना है।

इस प्रकार काव्य पुरूष दिनकर के मर्म तक पहुँचने में ये कविताएँ निस्संदेह–सहायक हैं। उन्होंने हिन्दी को गति दी है। प्रेरणा का उपहार दिया है और अपनी भावधारा में जनता के भाव विचारों को दर्पण की भाँति संजोया है।

•••••